जीवन जीने की कला

एक बार एक संत के पास एक जिज्ञासु आया और बोला – स्वामी जी, जीवन में बड़ा कष्ट है, हम जीवन जीने की कला सीखना चाहते हैं। कुछ क्षणों के मौन के पश्चात् जिज्ञासु के हाथों की रेखायें देखते हुए संत बोले – अब आये हो जीवन जीने की कला सीखने, अब तो तुम्हारा जीवन सप्ताह भर बचा है। यह सुनते ही जिज्ञासु अवाक् रह गया और वापस घर लौट आया। सप्ताह के बाद वह पुन: संत के पास पहुँचा और बोला – स्वामी जी, जीने की कला सिखानी नहीं आती थी, तो नहीं सिखाते परंतु आपने झूठ क्यों बोला, मैं तो सप्ताह बाद भी जिंदा हूँ।

संत ने पूछा – बीते सप्ताह में तुमने क्या किया? कैसी दिनचर्या रही? जिज्ञासु बोला – स्वामी जी, आपकी बात सुनते ही मन में विचार चलने लगे कि जिंदगी कितनी छोटी है, अभी तक मैंने कोई श्रेष्ठ कार्य तो किया ही नहीं। धन कमाने के चक्कर में आँखों की नींद गंवायी, सुख-चैन गंवाया, झूठ, कपट, बेईमानी का सहारा लिया, कितनों का दिल दुखाया, पाप किये, अब मेरी क्या गति होगी? फिर सोचा, बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय। अब बचे हुए समय को क्यों न सफल कर लिया जाये।

समय सफल करने की लगन लग गई तो सबसे पहले उन लोगों से माफी मांगी जिनका दिल दुखाया था। इस प्रकार दिल को हल्का किया, सभी का कर्ज चुकाया। फिर मैंने महसूस किया कि यदि मेरे द्वारा अर्जित धन-संपत्ति से, मेरी मृत्यु के बाद भी कोई पाप कर्म होगा तो पाप का बोझ चढ़ता रहेगा। समझदार लोग तो पुण्य की पूंजी निरंतर बढ़ाने के लिए कुएँ, बावड़ियाँ, धर्मशालायें, मंदिर, गुरुद्वारे, सत्संग भवन, अस्पताल आदि बनवाते हैं, ताकि निरंतर लोगों की दुआयें मिलती रहें। अत: मैंने तुरंत अपने बच्चों को जीवन-यापन के साधन उपलब्ध कराते हुए अपने एक मकान को सत्संग भवन बना दिया जिसमें एक त्यागी, तपस्वी, बाल ब्रह्मचारी महात्मा जी नित्य अपना प्रवचन करने लगे। अपनी चल संपत्ति भी उन्हीं महात्मा जी की अध्यक्षता में एक ट्रस्ट बनाकर उसके हवाले कर दी और मैं भी नित्य उसी सत्संग में जाने लगा। इस एक सप्ताह में मैंने यह ध्यान रखा कि मेरे किसी बोल और कार्य से किसी को कोई तकलीफ न हो। हर एक को सुख देना और सुखदायी बोल बोलना ही मेरे इन सात दिनों का लक्ष्य बन गया। मैं इस दुनिया में चंद दिनों का मेहमान हूँ, यह सोचकर इस दुनिया की हर चीज़ से दिल हटती गई और चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते, कर्म करते सदा बुद्धि में यही रहा कि अब मुझे भगवान के घर जाना है।

संत जी मुस्कराकर बोले – मैंने तुम्हें जीवन जीने की कला ही तो सिखायी है। पिछले एक सप्ताह में तुमने जिस प्रकार का जीवन व्यतीत किया, वही तो जीने की कला है।

उपरोक्त वार्तालाप का सार यही है कि जीवन से उपराम होने पर ही जीवन जीने की कला आती है। **लेकिन आज का इंसान तो ऐसे जीता है जैसे कि वह कभी मरेगा ही नहीं और ऐसे मरता है जैसे कि वह कभी जीया ही नहीं।** वह यह भूल जाता है कि इस संसार में जो भी आया है उसे जाना है और जाना भी अचानक है। कौन-सी घड़ी अंतिम घड़ी होगी, यह ज्ञान किसी को भी नहीं है। अंतिम श्वास के पश्चात् दुनिया की सारी संपदा लगा देने पर भी, एक श्वास वापस नहीं मिल पाता। फिर भी इंसान अमूल्य श्वासों को कौड़ियों के पीछे व्यर्थ गंवाता रहता है। पहले वह पैसा कमाने के चक्कर में स्वास्थ्य, शांति और नींद गंवा देता है फिर इन्हीं चीजों को प्राप्त करने के लिये पैसे गंवाता है किंतु फिर भी उसे स्वास्थ्य, शांति और नींद नहीं प्राप्त होती। क्या जीवन है आज के इंसान का? तरस आता है ऐसे जीवन पर। परमपिता परमात्मा ने हम बच्चों को यही शिक्षा दी है कि **बच्चे, 'हर घड़ी को अंतिम घड़ी समझो', 'बीती को बीती देखो, दुनिया न जीती देखो', 'दुआयें देते और दुआयें लेते रहो', 'निरंतर एक की याद में रहो', जीवन जीने की कला यही है।** ❑